International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 30-07-2025, Accepted: 31-08-2025, Published: 15-09-2025
Volume 11, Issue 3, 2025, Page No. 107-112

हिंदी साहित्य में मानवतावाद का विकास

विनोद कुमार
शोधार्थी, हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद, तेलंगाना, भारत

सारांश
हिंदी साहित्य में मानवतावाद मानव गरिमा, समानता, तर्क और सामाजिक न्याय पर आधारित एक चिंतन धारा है, जो पाश्चात्य पुनर्जागरण–ज्ञानोदय तथा भारतीय वैदिक–उपनिषदिक चिंतन से प्रेरित है। आदिकाल में वीरगाथाओं के लोक–जीवन चित्रण से बीज अंकुरित हुए, जबकि भक्तिकाल में निर्गुण, सगुण काव्य ने चरम अभिव्यक्ति दी। रीतिकाल में दरबारी श्रृंगारिकता के बीच भूषण की राष्ट्रीय चेतना ने क्षीण स्वर बुलंद किया। आधुनिक काल में भारतेंदु युग ने राष्ट्रीय जागरण से, द्विवेदी युग ने नैतिक उपयोगितावाद से, छायावाद एवं प्रगतिवाद से इसे पुनर्जागृत किया। उपन्यास–कहानियों में प्रेमचंद का यथार्थवाद, जैनेंद्र का मनोविश्लेषण, यशपाल–रांगेय का वर्ग–संघर्ष तथा कृष्णा सोबती– मनू भंडारी का स्त्री–विमर्श मानवतावाद को बहुआयामी बनाते हैं।
इस आलेख में हिंदी साहित्य में मानवतावाद का विकास जो हिंदी साहित्य के उद्‌भव से लेकर आधुनिक साहित्य तक विभिन्न काल खंडों में किस प्रकार हुआ है को प्रस्तुत किया गया हैं।

मूल शब्दः हिंदी साहित्य, मानवतावाद, मानव गरिमा, सामाजिक न्याय, भक्ति आंदोलन, निर्गुणदृसगुण काव्य, राष्ट्रीय चेतना

प्रस्तावना
मानवतावाद एक ऐसी दार्शनिक धारा है जो मानव को केंद्र में स्थापित करते हुए उसके मूल्यों, गरिमा, तर्कशक्ति और नैतिकता पर बल देती है। यह विचारधारा मानव जीवन को सर्वोच्च महत्व प्रदान करती है, जिसमें धार्मिक या अलौकिक तत्वों के स्थान पर मानवीय अनुभव, विज्ञान और सामाजिक न्याय को प्राथमिकता दी जाती है। सार्वभौमिक संदर्भ में मानवतावाद मानवता की एकता, समानता और स्वतंत्रता का प्रतीक है, जो प्राचीन काल से ही विभिन्न संस्कृतियों में विद्यमान रहा है। पाश्चात्य संदर्भ में इसका उदय पुनर्जागरण काल से जुड़ा है, जहां इटली के विद्वान जैसे पेट्रार्क और इरास्मस ने मानव–केंद्रित दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया। यह ज्ञानोदय युग की देन है, जहां वोल्टेयर और रूसो जैसे विचारकों ने तर्कवाद, धर्मनिरपेक्षता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर जोर दिया। 19वीं शताब्दी में प्रत्यक्षवाद और वैज्ञानिक क्रांति ने इसे मजबूत आधार प्रदान किया, जिससे मानवतावाद एक धर्मनिरपेक्ष आंदोलन के रूप में उभरा, जो चर्च की सत्ता के विरुद्ध खड़ा हुआ। यहां मानव को प्रकृति का हिस्सा मानकर उसके बौद्धिक और नैतिक विकास को प्रोत्साहित किया गया।
वहीं, भारतीय संदर्भ में मानवतावाद की जड़ें वैदिक काल से गहरी हैं, हालांकि इसे स्पष्ट रूप से परिभाषित न किया गया हो। उपनिषदों में 'तत्वमसि' (तू वही है) का सिद्धांत अहिंसा, करुणा और मानव एकता का प्रतीक है। बौद्ध और जैन दर्शन में अहिंसा, समता और दुख–निवारण की अवधारणा मानवतावादी मूल्यों को प्रतिबिंबित करती है। भगवान बुद्ध की शिक्षाएं मानव कल्याण पर केंद्रित हैं, जहां जाति–पाति का खंडन किया गया। मध्यकाल में संत कबीर, रैदास और नानक जैसे भक्तों ने भक्ति आंदोलन के माध्यम से मानवतावाद को जीवंत किया, जो सामाजिक समानता और ईश्वर–मानव एकता पर आधारित था। आधुनिक काल में स्वामी विवेकानंद ने वेदांत के माध्यम से 'दिव्यता का प्रत्यक्षीकरण' की अवधारणा प्रस्तुत की, जो मानव गरिमा को सर्वोच्च स्थान देती है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का 'एकात्म मानववाद' भारतीय संदर्भ में इसका समन्वयात्मक रूप है, जो व्यक्ति, समाज और प्रकृति के सामंजस्य पर जोर देता है। इस प्रकार, पाश्चात्य मानवतावाद तर्क–आधारित और व्यक्तिवादी है, जबकि भारतीय रूप आध्यात्मिक और समग्रवादी, जो मानव को ब्रह्मांडीय संदर्भ में देखता है। दोनों के संयोजन से ही सार्वभौमिक मानवतावाद का स्वरूप पूर्ण होता है।
हिंदी साहित्य में मानवतावाद सिद्धांत का महत्व अतुलनीय है, क्योंकि यह साहित्य को मात्र सौंदर्य–भाषा का माध्यम न बनाकर सामाजिक परिवर्तन का साधन बनाता है। भक्तिकाल से ही कबीर की दोहे (जाति न पूछो साधु की) ने जातिवाद के विरुद्ध मानव एकता का उद्‌घोष किया, जबकि छायावाद में जयशंकर प्रसाद और निराला ने मानव संघर्ष और करुणा को चित्रित किया। प्रगतिवाद और दलित साहित्य में प्रेमचंद, नागार्जुन और ओमप्रकाश वाल्मीकि जैसे लेखकों ने शोषण, असमानता और मानवाधिकारों पर केंद्रित रचनाओं से इस सिद्धांत को मजबूत किया। आज के वैश्विक परिदृश्य में, जहां पर्यावरण संकट, युद्ध और असमानता व्याप्त हैं, हिंदी साहित्य में मानवतावाद का अध्ययन आवश्यक हो गया है। यह न केवल सांस्कृतिक जड़ों को मजबूत करता है, बल्कि समकालीन मुद्दों जैसे लिंग–समता, पर्यावरण न्याय और डिजिटल विभाजन पर प्रकाश डालता है। प्रासंगिकता के अभाव में साहित्य निष्प्राण हो जाता, जबकि मानवतावाद इसे जीवंत सामाजिक दर्पण बनाता है।

मानवतावाद की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि
मानवतावाद एक ऐसी विचारधारा है जो मानव जीवन, उसकी क्षमताओं और मूल्यों को केंद्र में रखकर विकसित हुई है। यह सिद्धांत धार्मिक या अलौकिक शक्तियों के स्थान पर मानवीय तर्क, नैतिकता और सामाजिक न्याय पर बल देता है। मानवतावाद का उद्‌भव और विकास मानव इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं से जुड़ा है, जो प्राचीन सभ्यताओं से लेकर आधुनिक युग तक फैला हुआ है। इसका प्रारंभिक रूप प्राचीन यूनान और रोम की सभ्यताओं में देखा जा सकता है, जहां सोक्रेट्स, प्लेटो और अरस्तू जैसे दार्शनिकों ने मानव बुद्धि और नैतिक जीवन पर जोर दिया। यूनानी दर्शन में 'प्रोटागोरस' का कथन "मानव सभी वस्तुओं का मापदंड है" मानवतावाद की प्रारंभिक झलक प्रदान करता है। मध्ययुग में यूरोप में ईसाई धर्म की प्रधानता के कारण यह विचारधारा दब गई, जहां जीवन का केंद्र ईश्वर था और मानव को पापी तथा अधीन माना जाता था।
पुनर्जागरण काल (14वीं से 17वीं शताब्दी) में मानवतावाद का पुनरुत्थान हुआ, जो यूरोपीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। इटली से आरंभ होकर यह आंदोलन पूरे यूरोप में फैला। पुनर्जागरण मानवतावाद ने प्राचीन यूनानी–रोमन संस्कृति का

पुनरावलोकन किया, जहां कला, साहित्य और विज्ञान में मानव को केंद्र बनाया गया। फ्रांसेस्को पेट्रार्क को 'मानवतावाद का पिता' कहा जाता है, जिन्होंने लैटिन ग्रंथों का अध्ययन कर मानवीय भावनाओं और व्यक्तिगत अनुभवों को महत्व दिया। इरास्मस ने 'प्रशंसा की मूर्खता' जैसी रचनाओं में चर्च की कट्टरता का विरोध किया और तर्कपूर्ण जीवन की वकालत की। लियोनार्डो दा विंची और माइकलएंजेलो जैसे कलाकारों ने मानव शरीर और भावनाओं को अपनी कृतियों में जीवंत किया, जो मानव सौंदर्य और क्षमता का उत्सव था। इस काल में मानवतावाद ने धार्मिक अंधविश्वासों से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया, जिससे वैज्ञानिक जांच और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बढ़ावा मिला। गैलीलियो और कोपरनिकस जैसे वैज्ञानिकों ने ब्रह्मांड को मानव–केंद्रित न मानकर भी मानवीय जिज्ञासा को प्रोत्साहित किया। पुनर्जागरण मानवतावाद का मूल मंत्र था 'ह्यूमैनिटास' जो शिक्षा, नैतिकता और सांस्कृतिक विकास पर आधारित था। यह आंदोलन मात्र बौद्धिक नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बना, जिसने यूरोप को मध्ययुगीन अंधकार से बाहर निकाला।

आधुनिक मानवतावाद 18वीं शताब्दी के ज्ञानोदय युग से मजबूत हुआ, जहां वोल्टेयर, जॉन लॉक और जीन–जैक्स रूसो जैसे विचारकों ने मानव अधिकारों, लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता पर जोर दिया। 19वीं शताब्दी में ऑगस्ट कॉम्टे के प्रत्यक्षवाद ने वैज्ञानिक विधि को मानवतावाद का आधार बनाया, जबकि 20वीं शताब्दी में अस्तित्ववाद के माध्यम से सार्त्र और कामू ने मानव स्वतंत्रता और जिम्मेदारी को केंद्र में रखा। आधुनिक मानवतावाद के प्रमुख सिद्धांतों में धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद प्रमुख है, जो 1933 के 'मानवतावादी घोषणापत्र' में अभिव्यक्त हुआ। यह घोषणापत्र अमेरिकी मानवतावादी संघ द्वारा जारी किया गया, जिसमें विज्ञान, लोकतंत्र और नैतिकता को मानव कल्याण का आधार माना गया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, 1952 और 1973 के घोषणापत्रों ने पर्यावरण, शांति और वैश्विक न्याय को शामिल किया। आज का मानवतावाद संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार घोषणापत्र (1948) से प्रेरित है, जो समानता और स्वतंत्रता को सार्वभौमिक बनाता है। प्रमुख सिद्धांतों में शामिल हैं: मानव जीवन की पवित्रता बिना ईश्वर के, तर्क–आधारित निर्णय, सामाजिक न्याय और सतत विकास। यह विचारधारा नास्तिकता से जुड़ी नहीं, बल्कि बहुलतावादी है, जहां विभिन्न विश्वासों का सम्मान किया जाता है, लेकिन अंधविश्वास का विरोध।

मानवतावाद के मुख्य तत्वों में सबसे महत्वपूर्ण है मानव की केंद्रीयता । यह सिद्धांत मानव को ब्रह्मांड का केंद्र मानता है, जहां सभी मूल्यांकन मानवीय दृष्टिकोण से होते हैं। पुनर्जागरण में यह विचार प्राचीन यूनानी दर्शन से लिया गया। आधुनिक संदर्भ में यह व्यक्तिवाद को बढ़ावा देता है, जहां व्यक्ति की क्षमताओं का विकास समाज का आधार है। दूसरा तत्व है तर्क, बुद्धि और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का महत्व। मानवतावाद अंधविश्वास और धार्मिक कट्टरता का विरोध करता है, तथा विज्ञान को सत्य की खोज का माध्यम मानता है। डार्विन के विकासवाद और फ्रायड के मनोविश्लेषण ने इसे मजबूत किया, जहां मानव व्यवहार को वैज्ञानिक रूप से समझा जाता है। तर्कपूर्ण सोच से नैतिक निर्णय लिए जाते हैं, जैसे उपयोगितावाद में जेरेमी बेंथम का 'अधिकतम सुख' का सिद्धांत। तीसरा तत्व है मानव–गरिमा, स्वतंत्रता और समानता। मानव गरिमा प्रत्येक व्यक्ति की अंतर्निहित मूल्य को स्वीकार करती है, जो जन्मजात है। स्वतंत्रता में विचार, अभिव्यक्ति और चुनाव की आजादी शामिल है, जबकि समानता जाति, लिंग, धर्म या राष्ट्रीयता से परे है। यह तत्व फ्रांसीसी क्रांति के 'स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व' से प्रेरित है और आधुनिक मानवाधिकार आंदोलनों में जीवंत है।

भारतीय चिंतन में मानवतावाद के बीज प्राचीन काल से विद्यमान हैं, हालांकि इसे पाश्चात्य शब्दावली में नहीं बांधा गया। वैदिक और उपनिषदिक विचारों में 'वसुधैव कुटुंबकम' की अवधारणा मानव एकता और करुणा का प्रतीक है। ऋग्वेद में मानव को ब्रह्मांड का हिस्सा मानकर उसकी गरिमा को स्वीकार किया गया, जहां 'पुरुष सूक्त' में मानव शरीर को ब्रह्मांडीय पुरुष का रूप माना गया। उपनिषदों में 'अहं ब्रह्मास्मि' और 'तत्वमसि' जैसे मंत्र मानव की दिव्यता और समानता पर जोर देते हैं। यह आध्यात्मिक मानवतावाद है, जो आत्म–ज्ञान और नैतिक जीवन को केंद्र में रखता है। ईश्वर को मानव–रूप में देखना, जैसे कृष्ण की गीता में 'सर्वभूतस्थितं' मानव गरिमा को बढ़ाता है।

बौद्ध और जैन दर्शन का प्रभाव भारतीय मानवतावाद को गहराई प्रदान करता है। बौद्ध दर्शन में गौतम बुद्ध ने 'चतुआर्य सत्य' और 'अष्टांगिक मार्ग' के माध्यम से दुख–निवारण और करुणा पर जोर दिया, जो मानव कल्याण–केंद्रित है। अहिंसा और समता के सिद्धांत जाति–व्यवस्था का विरोध करते हैं, तथा तर्कपूर्ण जांच को महत्व देते हैं। महात्मा बुद्ध ने कहा, "स्वयं के दीपक बनो" जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता और बुद्धि का उत्सव है। जैन दर्शन में महावीर स्वामी की 'अनेकांतवाद' और 'स्यादवाद' विविधता का सम्मान करती है, जबकि अहिंसा परमो धर्मः मानव और जीव गरिमा को सर्वोच्च बनाता है। ये दर्शन धर्मनिरपेक्ष नहीं, लेकिन मानव–केंद्रित हैं, जहां मोक्ष मानव प्रयास से प्राप्त होता है। आधुनिक भारतीय विचारकों जैसे रवींद्रनाथ टैगोर और महात्मा गांधी ने इन बीजों को पाश्चात्य मानवतावाद से जोड़कर 'सर्वोदय' और 'सत्याग्रह' जैसे सिद्धांत विकसित किए, जो वैश्विक मानवतावाद का हिस्सा बने। इस प्रकार, भारतीय चिंतन में मानवतावाद आध्यात्मिक समग्रता प्रदान करता है, जो पाश्चात्य तर्कवाद से पूरक है।

आदिकाल और भक्तिकाल में मानवतावादी चेतना

हिंदी साहित्य के विकास क्रम में आदिकाल और भक्तिकाल ऐसे महत्वपूर्ण पड़ाव हैं, जहां मानवतावादी चेतना की अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में देखी जा सकती है। मानवतावाद, जैसा कि पूर्ववर्ती अनुभागों में चर्चित है, मानव गरिमा, समानता, तर्कपूर्ण दृष्टिकोण और सामाजिक न्याय पर आधारित है। आदिकाल (लगभग 10वीं से 14वीं शताब्दी) को वीरगाथा काल के रूप में जाना जाता है, जहां साहित्य मुख्यतः राजकीय वीरता और युद्धकथाओं पर केंद्रित था, किंतु इसमें लोक जीवन की झलकियां मानवतावादी तत्वों को उजागर करती हैं। वहीं, भक्तिकाल (14वीं से 17वीं शताब्दी) को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग माना जाता है, जहां भक्ति आंदोलन के माध्यम से मानवतावाद की चरम अभिव्यक्ति हुई। इस काल में निर्गुण और सगुण धाराओं के साथ–साथ सूफी काव्य ने धार्मिक समन्वय और प्रेम की सार्वभौमिकता को स्थापित किया।

आदिकाल में मानवतावाद के बीज सामाजिक–सांस्कृतिक समन्वय में दिखते हैं। इस काल में अपभ्रंश भाषा से हिंदी का उद्भव हुआ, जो लोकभाषा पर आधारित था। स्वयंभू जैसे कवियों को हिंदी का आदि कवि माना गया, जिनकी रचनाओं में मानवीय मूल्यों का संकेत है। उदाहरण के लिए, आदिकालीन साहित्य में मनुष्य को उसके सुख–दुख से जोड़कर देखा गया, जैसा कि एक उद्धरण में कहा गया: "आदिकाल में मनुष्य के लिए सबसे समीप मनुष्य है। हम जिसके सुख–दुख, हँसने–रोने का मर्म समझ सकते हैं, उसी से हमारी आत्मा का अधिक मेल होता है।" यह तर्कपूर्ण दृष्टिकोण और मानव गरिमा को रेखांकित करता है। हालांकि, जातिवाद और सामंती बंधनों के कारण पूर्ण मानवतावाद नहीं उभरा, लेकिन लोक जीवन की ये झलकियां भक्तिकाल के लिए आधार तैयार करती हैं।

भक्तिकाल: मानवतावाद का स्वर्ण युग

भक्तिकाल हिंदी साहित्य का सबसे उज्ज्वल काल है, जिसकी समयसीमा संवत् 1375 से 1700 तक मानी जाती है। आचार्य

रामचंद्र शुक्ल ने इसे 'स्वर्णयुग' कहा, क्योंकि यहां भक्ति आंदोलन ने सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिवर्तन लाया। इस काल में मानवतावाद की चेतना चरम पर पहुंची, जहां ईश्वर को मानव–रूप में देखा गया, जातिवाद का खंडन हुआ और समता, प्रेम तथा लोकमंगल की स्थापना हुई। भक्तिकाल की दो प्रमुख धाराएं निर्गुण और सगुण के साथ सूफी काव्य ने धार्मिक सद्भाव को बढ़ावा दिया। यह काल मुस्लिम आक्रमणों, सामाजिक विषमताओं और धार्मिक कट्टरता के बीच उभरा, जहां भक्त कवियों ने मानव एकता का संदेश दिया।

निर्गुण काव्यधारा (निर्गुण धारा)

निर्गुण धारा में ईश्वर को निराकार मानकर भक्ति की जाती है, और यहां मानवतावाद सामाजिक समता और रूढ़िवाद के खंडन में प्रकट होता है। कबीरदास इस धारा के प्रमुख कवि हैं, जिन्होंने जातिवाद, रूढ़िवादिता का खंडन कर मानव–प्रेम और समता का संदेश दिया। कबीर की रचनाएं जैसे 'बीजक' में दोहे सामाजिक न्याय की मांग करते हैं। उदाहरण स्वरूप, उनका प्रसिद्ध दोहारू "जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजियो ज्ञान। मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान।" यहां जातिवाद का खंडन कर ज्ञान और मानव गरिमा को महत्व दिया गया। कबीर ने हिंदू–मुस्लिम एकता पर जोर दिया, जैसे "कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाव। गले राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाव।" यह प्रेम और समर्पण की भावना को दर्शाता है, जो मानवतावादी है क्योंकि यह धार्मिक बंधनों से मुक्त होकर मानव एकता पर बल देता है। कबीर के काव्य में तर्कवाद प्रमुख है; वे अंधविश्वासों का विरोध करते हैं, जैसे "पाथर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहाड़।" यह पाश्चात्य मानवतावाद के तर्कपूर्ण दृष्टिकोण से मेल खाता है, जबकि भारतीय संदर्भ में यह करुणा और समता पर आधारित है। कबीर ने शोषित वर्ग के दुख को आवाज दी, जो दलित चेतना का प्रारंभ है।

गुरु नानक सिख धर्म के संस्थापक, निर्गुण धारा के अन्य प्रमुख व्यक्तित्व हैं, जिनकी शिक्षाएं धार्मिक सद्भाव और भाईचारे पर केंद्रित हैं। उनकी रचनाएं 'गुरु ग्रंथ साहिब' में संकलित हैं, जहां एक ईश्वर की अवधारणा से समानता का संदेश मिलता है। नानक ने कहा: "न कोई हिंदू, न कोई मुसलमान।" यह धार्मिक समन्वय का उदाहरण है, जो मानवतावाद की सार्वभौमिकता को रेखांकित करता है। शिक्षाएं जैसे "सबना जीआं का इक दाता, सो मैं विसर न जाई" (सभी जीवों का एक दाता है, उसे भूलना नहीं चाहिए) भाईचारे और करुणा पर जोर देती हैं। नानक की उदासियां (यात्राएं) में वे विभिन्न धर्मों के लोगों से मिले और सद्भाव का प्रचार किया। उदाहरण स्वरूप, वे कहते हैं:"।

सगुण काव्यधारा (सगुण धारा)

सगुण धारा में ईश्वर को साकार मानकर भक्ति की जाती है, और यहां मानवतावाद लोकमंगल और आदर्श समाज की स्थापना में दिखता है। तुलसीदास इस धारा के प्रमुख कवि हैं, जिनकी 'रामचरितमानस' लोकमंगल पर आधारित है। तुलसी ने राम को आदर्श पुरुष के रूप में चित्रित कर सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की। 'रामचरितमानस' में रामराज्य का वर्णन आदर्श समाज का प्रतीक है: "रामराज्य में कोई दुख नहीं, सभी समान हैं।" यहां लोकमंगल की भावना स्पष्ट है, जैसे "परहित सरिस धर्म नहिं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई।" यह दूसरों की भलाई को सर्वोच्च धर्म मानता है, जो मानवतावादी नैतिकता है। तुलसी ने जातिवाद का विरोध किया और रामभक्ति को सभी के लिए सुलभ बनाया, जो सामाजिक समता को बढ़ावा देता है। उनकी रचना में परिवार, समाज और नैतिक मूल्यों का समन्वय है, जो पाश्चात्य व्यक्तिवाद से भिन्न भारतीय समग्रवाद को दर्शाता है।

सूरदास सगुण धारा के अन्य प्रमुख कवि हैं, जिनके काव्य में वात्सल्य, प्रेम और मानव मन की सूक्ष्म अनुभूतियां प्रमुख हैं। "सूरसागर' में कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन वात्सल्य रस से भरा है, जो मानवीय भावनाओं को उजागर करता है। उदाहरण स्वरूप, पदरू "मैया मोरी मैं नहिं माखन खायो।" यहां यशोदा का वात्सल्य और कृष्ण की बाल चेष्टाएं मानव प्रेम की निर्मलता दिखाती हैं। आचार्य शुक्ल ने सूर को 'वात्सल्य का सम्राट' कहा, क्योंकि उन्होंने बाल मनोविज्ञान का सूक्ष्म चित्रण किया। सूर के काव्य में प्रेम की पवित्र स्थिति है, जहां सहज भावनाएं जैसे आकर्षण, व्यंग्य और विरह शामिल हैं। यह मानव गरिमा को बालक की दृष्टि से देखता है, जो भारतीय मानवतावाद की आध्यात्मिक गहराई को प्रकट करता है।

सूफी काव्य: प्रेम की सार्वभौमिकता और धार्मिक समन्वय

भक्तिकाल में सूफी काव्य (प्रेमाश्रयी धारा) हिंदू–मुस्लिम समन्वय का प्रतीक है, जहां प्रेम की सार्वभौमिकता और धार्मिक सद्भाव प्रमुख हैं। यह धारा मलिक मुहम्मद जायसी (पद्मावत), कुतबन (मृगावती) और मंझन (मधुमालती) जैसे कवियों से जुड़ी है। सूफी काव्य में लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्याख्या होती है, जो मानवतावादी है क्योंकि यह ऊंच–नीच के भेद को मिटाता है। जायसी ने 'पद्मावत' में रत्नसेन और पद्मावती की प्रेमकथा के जरिए प्रेम की सर्वोच्चता स्थापित की, जहां धार्मिक समन्वय स्पष्ट है। सूफी काव्य की विशेषताएं जैसे प्रकृति का रागात्मक चित्रण, विरह का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन और गुरु की प्रतिष्ठा मानव भावनाओं को सार्वभौमिक बनाती हैं। यह काव्य भारतीय प्रेम से भिन्न है, लेकिन समन्वयवादी है, जहां प्रेम विश्व धर्म स्थापित करता है। सूफी कवियों ने सांस्कृतिक तत्वों का उपयोग कर सद्भाव का संदेश दिया, जो आज के वैश्विक संदर्भ में प्रासंगिक है।

भक्तिकाल में मानवतावादी चेतना ने हिंदी साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाया, जो आधुनिक काल तक प्रभावी है। यह काल पाश्चात्य और भारतीय मानवतावाद का समन्वय दर्शाता है।

रीतिकाल में मानवतावाद का क्षीण स्वर

रीतिकाल (संवत् 1700–1900) हिंदी साहित्य का वह काल है जब मुगल साम्राज्य के पतन के बाद अनेक छोटे–छोटे दरबार उभरे और काव्य मुख्यतः राजाश्रय में रचा गया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे 'रीति–काल' कहा, क्योंकि काव्य–रचना के नियम–बन्धन (रीति) और अलंकार–प्रधानता इसकी विशेषता थी। इस काल में श्रृंगार रस की अत्यधिक प्रधानता रही, जिसमें नायक–नायिका भेद, रस–रंग, रूप–सौंदर्य और काम–क्रीड़ा का वर्णन प्रमुख था। केशवदास, बिहारी, मतिराम, पद्माकर जैसे कवियों ने 'रस–रहस्य', 'काव्य–निर्णय' और 'अलंकार–मंजरी' जैसे ग्रंथों में श्रृंगार को काव्य का प्राण बताया। दरबारी संस्कृति ने काव्य को विलासिता और कृत्रिमता की ओर मोड़ दिया, जहाँ मानव–जीवन के वास्तविक संघर्ष, सामाजिक विषमता या लोक–कल्याण की चिंता लगभग लुप्तप्राय थी। कवि राजा–रानी के सुख–दुख, प्रेम–विरह और सौंदर्य–चित्रण में डूबे रहे, जिससे मानवतावाद का स्वर अत्यंत क्षीण हो गया। फिर भी, इस श्रृंगार–प्रधानता के बीच कुछ कवियों ने राष्ट्रीयता, लोक–हित और नैतिक चेतना की झलक दिखाई, जो मानवतावादी तत्वों का संकेत देती है। भूषण (1613–1715) इस काल के सबसे उल्लेखनीय कवि हैं, जिन्होंने शिवाजी की वीरता और राष्ट्रीय स्वाभिमान को अपने काव्य का आधार बनाया। उनकी रचना 'शिवा–बावनी' में शिवाजी को 'राष्ट्र–रक्षक' के रूप में चित्रित किया गया है। उनकी दूसरी रचना 'भूषण–ग्रंथावली' में भी राष्ट्रीय चेतना और लोक–हित की भावना स्पष्ट है। वे मानव गरिमा को केवल दरबारी सौंदर्य में नहीं, बल्कि स्वाधीनता और सामाजिक न्याय में देखते हैं।

इस प्रकार, रीतिकाल में जहाँ श्रृंगार और दरबारी संस्कृति ने मानवतावाद को दबाया, वहीं भूषण और द्विवेदी जैसे कवियों ने

राष्ट्रीयता, लोक–हित और सामाजिक चेतना के माध्यम से उसका क्षीण स्वर बनाए रखा। यह स्वर आगे चलकर छायावाद और प्रगतिवाद में पूर्ण विकसित हुआ।

आधुनिक काल में मानवतावाद का पुनर्जागरण

आधुनिक काल (संवत् 1900 से वर्तमान तक) हिंदी साहित्य में मानवतावाद का पुनर्जागरण का काल है, जहां औपनिवेशिक शासन, सामाजिक परिवर्तन, औद्योगीकरण और वैश्विक विचारधाराओं के प्रभाव से मानवतावादी चेतना नई ऊर्जा के साथ उभरी। यह काल भारतेंदु युग से प्रारंभ होकर द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता तक फैला है। यहां मानवतावाद पाश्चात्य प्रभाव जैसे व्यक्तिवाद, अस्तित्ववाद और मार्क्सवाद से प्रभावित हुआ, किंतु भारतीय संदर्भ में लोकमंगल, करुणा और सामाजिक न्याय के साथ समन्वित रहा। आधुनिक हिंदी साहित्य ने मानव को उसके सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और आर्थिक संदर्भों में देखा, जहां गरिमा, स्वतंत्रता और समानता की खोज प्रमुख है। इस अनुभाग में विभिन्न युगों और कवियों के माध्यम से इस पुनर्जागरण का विश्लेषण किया जाएगा, जो हिंदी साहित्य को वैश्विक पटल पर स्थापित करता है।

भारतेंदु युगः सामाजिक सुधार, राष्ट्रीय चेतना और आधुनिकता का उदय

भारतेंदु युग (संवत् 1907–1942) आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रारंभिक चरण है, जिसे 'भारतेंदु मंडल' के नाम से जाना जाता है। इस युग में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ, साथ ही सामाजिक सुधार और आधुनिकता की लहर चली। भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850–1885) इस युग के प्रमुख व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाया। उनके काव्य और नाटकों में मानवतावाद सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय जागरण के रूप में प्रकट होता है। भारतेंदु ने 'भारत–दुर्दशा' (1880) नाटक में गरीबी, अशिक्षा और विदेशी शोषण का चित्रण किया, जहां मानव गरिमा को औपनिवेशिक दासता से मुक्त करने की मांग है। वे लिखते हैं: "अंग्रेज़ी पढ़के हुआ क्या, अंग्रेज़ी राज में भूखे मरते हैं लोग।" यह आर्थिक विषमता और शिक्षा के माध्यम से मानव विकास पर बल देता है।
भारतेंदु की राष्ट्रीय चेतना 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल' जैसे कथनों में दिखती है, जो भाषा को मानव पहचान का आधार मानती है। उन्होंने सामाजिक सुधार जैसे विधवा विवाह, बाल विवाह विरोध और स्त्री शिक्षा पर जोर दिया। उनकी पत्रिका 'कविवचन सुधा' (1867) ने साहित्य को लोक–उन्मुख बनाया, जहां मानवतावाद उपयोगितावादी है—साहित्य का उद्देश्य सामाजिक कल्याण। अन्य लेखकों जैसे बालकृष्ण भट्ट ('प्रदीप' पत्रिका) और प्रताप नारायण मिश्र 'ब्राह्मण' ने भी राष्ट्रीयता और सुधार को केंद्र में रखा। मिश्र का कथन "हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान" राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है, जो मानव समानता पर आधारित है।
इस युग में आधुनिकता का उदय पाश्चात्य प्रभाव से हुआ, जहां वोल्टेयर और रूसो की तरह तर्कवाद और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को अपनाया गया। लेकिन भारतीय संदर्भ में यह लोकमंगल से जुड़ा रहा, जैसा कि भारतेंदु के 'अंधेर नगरी' नाटक में व्यंग्य के माध्यम से भ्रष्टाचार का विरोध। यह युग मानवतावाद को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ता है, जहां गांधी और टैगोर के विचारों की झलक मिलती है। कुल मिलाकर, भारतेंदु युग ने मानव को उसके सामाजिक संदर्भ में देखकर आधुनिक हिंदी साहित्य की नींव रखी।

द्विवेदी युग में मानवतावाद

द्विवेदी युग (1900–1920) को 'सुधार युग' या 'गद्य युग' कहा जाता है, जहां महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864–1938) ने 'सरस्वती' पत्रिका (1900 से संपादन) के माध्यम से हिंदी साहित्य को व्यवस्थित किया। द्विवेदी ने साहित्य को 'ज्ञान राशि का संचित कोष' माना, जो मानव विकास का साधन है। उनके अनुसार, साहित्य नैतिकता और उपयोगितावाद पर आधारित होना चाहिए, जहां मानवतावाद ज्ञान, नैतिक मूल्यों और सामाजिक उपयोगिता में प्रकट होता है। द्विवेदी की रचनाएं जैसे 'साहित्य साधना' में वे कहते हैं: "साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन नहीं, बल्कि नैतिक उत्थान है।" यह पाश्चात्य उपयोगितावाद (बेंथम) से प्रेरित है, लेकिन भारतीय नैतिकता से जुड़ा।
द्विवेदी ने भाषा को शुद्ध और सरल बनाया, जो लोक–उन्मुख था। उनके निबंधों में स्त्री शिक्षा, सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय चेतना प्रमुख हैं। उदाहरण स्वरूप, 'स्त्री शिक्षा' निबंध में वे स्त्रियों की गरिमा और समानता पर जोर देते हैं। अन्य लेखकों जैसे बालमुकुंद गुप्त 'भारत मित्र' और चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने भी नैतिकता पर बल दिया। गुलेरी की 'उसने कहा था' कहानी में युद्ध के बीच मानवीय प्रेम और करुणा का चित्रण है, जो मानव गरिमा को युद्ध की क्रूरता से ऊपर रखता है।
इस युग में उपयोगितावाद ने साहित्य को सामाजिक दर्पण बनाया, जहां द्विवेदी के संपादन ने नए लेखकों को प्रोत्साहित किया। उनकी दृष्टि में साहित्य 'मानव जीवन का प्रतिबिंब' है, जो तर्कपूर्ण और नैतिक है। यह युग छायावाद के लिए आधार तैयार करता है, जहां मानवतावाद भावनात्मक गहराई प्राप्त करता है। द्विवेदी युग ने हिंदी को आधुनिक बनाकर मानवतावादी मूल्यों को संस्थागत किया।

छायावादी काव्य में मानवतावाद

छायावाद (1918–1936) हिंदी कविता का रोमांटिक युग है, जहां प्रकृति, भावना और व्यक्तिगत अनुभूतियां प्रमुख हैं। लेकिन यहां मानवतावाद सांस्कृतिक और भावनात्मक रूप में उभरता है, जहां मानव को उसके आंतरिक संघर्ष और करुणा से जोड़ा गया। जयशंकर प्रसाद (1889–1937) छायावाद के प्रमुख स्तंभ हैं, जिनके काव्य में सांस्कृतिक मानवतावाद और 'आनंदवाद' प्रमुख है। प्रसाद ने 'कामायनी' (1936) महाकाव्य में मानव विकास को मिथक के माध्यम से चित्रित किया, जहां मनु और श्रद्धा की कथा मानव की आध्यात्मिक यात्रा है। उनका 'आनंदवाद' मानव जीवन को आनंद–केंद्रित मानता है, जैसा कि वे कहते हैं: "आनंद ही जीवन है।" यह भारतीय वेदांत से प्रेरित है, जहां मानव गरिमा आनंद की खोज में है। प्रसाद की नाटक जैसे 'स्कंदगुप्त' में राष्ट्रीय चेतना और मानवीय मूल्य दिखते हैं।
सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (1896–1961) छायावाद में विद्रोही स्वर लाए, जहां दीन–हीन मानव के प्रति करुणा प्रमुख है। उनकी कविता 'भिखारी' में भिखारी का चित्रण करुणा जगाता है: "दीन दुखी दरिद्र नर,/भिक्षा मांगता द्वार–द्वार।" निराला ने जातिवाद और शोषण का विरोध किया, जैसे 'राम की शक्ति पूजा' में राम को मानवीय दुविधा में दिखाया। उनका विद्रोही स्वर 'कुकुरमुत्ता' में व्यंग्य के रूप में है, जो सामाजिक असमानता पर प्रहार करता है। निराला का मानवतावाद करुणा और विद्रोह का समन्वय है, जो प्रगतिवाद की ओर इशारा करता है।
सुमित्रानंदन पंत (1900–1977) छायावाद में प्रकृति से मानव की ओर मुड़े, जहां अरविंद दर्शन का प्रभाव स्पष्ट है। पंत की प्रारंभिक रचनाएं जैसे 'पल्लव' (1926) प्रकृति–प्रेम से भरी हैं, लेकिन बाद में 'युगांत' और 'लोकायतन' में मानव कल्याण पर जोर दिया। अरविंद के 'सावित्री' से प्रेरित होकर पंत ने मानव को दिव्यता की ओर ले जाने वाला माना। वे कहते हैं: "मानव प्रकृति का पुत्र है, लेकिन उसका लक्ष्य दिव्यता है।" यह आध्यात्मिक मानवतावाद है, जो समग्र विकास पर बल देता है।
महादेवी वर्मा (1907–1987) छायावाद की एकमात्र महिला कवयित्री हैं, जिनके काव्य में वेदना के माध्यम से सार्वभौमिक

करुणा की अभिव्यक्ति है। 'नीहार' (1930) और 'रश्मि' (1932) में विरह और वेदना प्रमुख हैं, लेकिन यह व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सार्वभौमिक है। महादेवी की 'दीपशिखा' में करुणा का स्वररू "मैं नीर भरी दुख की बदली।" वे स्त्री–विमर्श की अग्रदूत हैं, जहां मानव गरिमा वेदना की गहराई में है। छायावाद ने मानवतावाद को भावनात्मक आयाम दिया, जो पूर्ववर्ती युगों से भिन्न है।

प्रगतिवाद: मार्क्सवादी दृष्टिकोण और शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति

प्रगतिवाद (संवत1993–2003) मार्क्सवादी प्रभाव से युक्त है, जहां साहित्य को क्रांति का साधन माना गया। यहां मानवतावाद शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति और सामाजिक यथार्थवाद में प्रकट होता है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण ने पूंजीवाद का विरोध कर वर्ग–संघर्ष को केंद्र में रखा, जहां मानव मुक्ति आर्थिक समानता से जुड़ी। प्रेमचंद (1880–1936) प्रगतिवाद के अग्रदूत हैं, हालांकि वे द्विवेदी युग से जुड़े। उनकी 'गोदान' (1936) में होरी का संघर्ष शोषण का प्रतीक है, जो मानव गरिमा की मांग करता है।

नागार्जुन (1911–1998) प्रगतिवाद के प्रमुख कवि हैं, जिनके काव्य में सामाजिक यथार्थवाद और आर्थिक विषमता का चित्रण है। उनकी 'भरथरी' और 'यात्रा' में किसान–मजदूर के दुख: "भूखे पेट भजन न होई गोपाला।" नागार्जुन का व्यंग्य 'बादल को घिरते देखा है' में राजनीतिक शोषण पर प्रहार है। केदारनाथ अग्रवाल (1911–2000) की 'युग की गंगा' में प्रकृति और मानव का समन्वय है, लेकिन शोषण का विरोध प्रमुख। वे कहते हैं: "मजदूर की मुट्ठी में दुनिया है।" प्रगतिवाद ने मानवतावाद को वर्ग–आधारित बनाया, जो वैश्विक कम्युनिस्ट आंदोलनों से जुड़ा।

प्रयोगवाद और नई कविता: व्यक्ति की अस्मिता की खोज और मानव मन की जटिलता

प्रयोगवाद (संवत् 2003–2017) और नई कविता (1950 के बाद) में व्यक्ति की अस्मिता और अस्तित्ववाद का प्रभाव प्रमुख है। यहां मानवतावाद व्यक्तिगत सत्य और मनोवैज्ञानिक जटिलता में है। सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय ' (1911–1987) प्रयोगवाद के नेता हैं, जिनका 'व्यक्ति–सत्य' व्यक्ति की स्वतंत्रता पर बल देता है। 'तरुण के स्वप्न' और 'शेखर: एक जीवनी' में अस्तित्व की खोजरू "व्यक्ति का सत्य ही सार्वभौमिक सत्य है।" अज्ञेय ने पाश्चात्य अस्तित्ववाद (सार्त्र) को भारतीय संदर्भ में अपनाया।

नई कविता में मुक्तिबोध (1917–1964) की 'अंधेरे में' मानव मन की जटिलता चित्रित है, जहां आत्म–संघर्ष और सामाजिक दायित्व का समन्वय है। धर्मवीर भारती और रघुवीर सहाय ने भी व्यक्ति अस्मिता पर जोर दिया। यह काल मानवतावाद को आधुनिक बनाता है, जहां वैश्विक प्रभाव से हिंदी साहित्य समृद्ध हुआ। आधुनिक काल में मानवतावाद का पुनर्जागरण हिंदी साहित्य को गतिशील बनाता है, जो समकालीन मुद्दों से जुड़ा है।

हिंदी उपन्यास और कहानियों में मानवतावादी विमर्श

हिंदी साहित्य में उपन्यास और कहानी विधाओं ने मानवतावाद को एक नई अभिव्यक्ति प्रदान की है, जहां व्यक्तिगत संघर्ष, सामाजिक विषमताएं और नैतिक मूल्य कथानक के केंद्र में रहे हैं। आधुनिक काल के इन विधाओं में मानवतावाद पाश्चात्य यथार्थवाद और भारतीय लोक–कल्याण की परंपरा का समन्वय दर्शाता है। प्रेमचंद से प्रारंभ होकर जैनेंद्र, यशपाल, रांगेय राघव और महिला लेखिकाओं तक, यह विमर्श शोषण, आत्मिक खोज, आर्थिक संघर्ष और लिंग–समता जैसे मुद्दों पर केंद्रित है। उपन्यास और कहानियां मात्र कथा–वाचन नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का साधन बनीं, जहां मानव गरिमा, स्वतंत्रता और समानता की मांग की गई।

मुंशी प्रेमचंद (1880–1936) हिंदी उपन्यास के पितामह हैं, जिन्होंने यथार्थवाद को मानवतावादी आधार प्रदान किया। उनका साहित्य शोषित वर्ग की पीड़ा को केंद्र में रखकर सामाजिक न्याय की मांग करता है, जो मार्क्सवादी प्रभाव से युक्त है लेकिन भारतीय संदर्भ में आदर्शोन्मुख है। 'गोदान' (1936) उनका महानतम उपन्यास है, जहां किसान होरी का चित्रण मानव संघर्ष का प्रतीक है। होरी एक साधारण किसान है, जो जमीन के प्रति लगाव और आर्थिक शोषण के बीच जूझता है। उपन्यास में होरी की मृत्यु से पूर्व गाय खरीदने की इच्छा मानव गरिमा की खोज को दर्शाती है: "गाय तो लाओगे ही न होरी?" यह पंक्ति किसान की आत्म–सम्मान की पुकार है। प्रेमचंद ने जमींदारी, साहूकारी और औद्योगिक पूंजीवाद के शोषण को उजागर किया, जहां धनिया (होरी की पत्नी) स्त्री–शक्ति का प्रतीक बनती है।

'गोदान' में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद स्पष्ट है—प्रेमचंद यथार्थ को चित्रित करते हैं लेकिन नैतिक समाधान सुझाते हैं। गोविंदी, मालती और जेल के दृश्यों में शोषितों की एकता का संदेश है, जो मानवतावादी समता पर आधारित है। प्रेमचंद ने कहा था: "साहित्य समाज का दर्पण है," लेकिन उनका दर्पण परिवर्तनकारी है। इसी प्रकार, 'कर्मभूमि' में अमरकांत एक युवा क्रांतिकारी है, जो मजदूर वर्ग के संघर्ष को चित्रित करता है। उपन्यास में चमार बस्ती का वर्णन आर्थिक विषमता को उजागर करता है: "मजदूर की कमर टूट गई, लेकिन मालिक का कारखाना चला।" यहां प्रेमचंद ने गांधीवादी अहिंसा और समाजवादी न्याय का समन्वय किया, जहां अमरकांत का त्याग मानव कल्याण का आदर्श है।

प्रेमचंद की कहानियां जैसे 'कफन' और 'पूस की रात' में भी मानवतावाद प्रमुख है। 'कफन' में घीसू और माधव की दारु–भोज की घटना शोषण की चरम क्रूरता दिखाती है, लेकिन करुणा जगाती है। प्रेमचंद का मानवतावाद उपयोगितावादी है—वह पाठक को सामाजिक जागृति की ओर ले जाता है। उनके साहित्य ने हिंदी गद्य को लोक–उन्मुख बनाया, जो प्रगतिवाद का आधार बना।

जैनेंद्र कुमार (1905–1988) हिंदी उपन्यास के मनोविश्लेषणात्मक धारा के प्रणेता हैं, जहां मानवतावाद व्यक्ति की आंतरिक जटिलता और आत्मिक स्वतंत्रता पर केंद्रित है। वे प्रेमचंद के यथार्थवाद से अलग होकर अस्तित्ववादी दृष्टिकोण अपनाते हैं, जो सार्त्र और कामू से प्रभावित है लेकिन भारतीय आध्यात्मिकता से युक्त। जैनेंद्र का मानवतावाद व्यक्तिवादी है—व्यक्ति को समाज से ऊपर रखकर उसकी नैतिक दुविधा का विश्लेषण। 'त्यागपत्र' उनका प्रमुख उपन्यास है, जहां नायक रवींद्र की अंतर्मन की उथल–पुथल आत्मिक स्वतंत्रता की खोज है। रवींद्र एक उच्च अधिकारी है, लेकिन भ्रष्टाचार से घिरा समाज उसे त्याग की ओर ले जाता है। उपन्यास में मनोवैज्ञानिक जटिलता स्पष्ट हैरू "मैं क्या हूँ? एक दास या स्वतंत्र आत्मा?" यह प्रश्न मानव गरिमा की तलाश दर्शाता है।

जैनेंद्र ने व्यक्ति की नैतिकता को केंद्रीय बनाया, जहां बाहरी संघर्ष आंतरिक संकट से जुड़े हैं। 'सुनीता' में नायिका की भावनात्मक उथल–पुथल स्त्री–मन की गहराई दिखाती है, जो लिंग–आधारित स्वतंत्रता की मांग करती है। उनकी कहानी 'पत्नी' में वैवाहिक संबंधों की जटिलता मानव संबंधों की नाजुकता को उजागर करती है। जैनेंद्र का मानवतावाद तर्कपूर्ण है—वे कहते हैं: "मानव की स्वतंत्रता उसके अंतर्मन में है।" यह पाश्चात्य व्यक्तिवाद को भारतीय कर्म–सिद्धांत से जोड़ता है। उनके साहित्य में कोई सरल समाधान नहीं; बल्कि पाठक को स्वयं सोचने को विवश किया जाता है। जैनेंद्र ने हिंदी उपन्यास को मनोवैज्ञानिक आयाम दिया, जो प्रयोगवाद की नींव रखता है।

यशपाल (1903–1976) और रांगेय राघव (1923–1979) प्रगतिवादी परंपरा के लेखक हैं, जिनके उपन्यासों में सामाजिक–आर्थिक समस्याओं और संघर्ष का चित्रण मानवतावाद

को क्रांतिकारी रूप देता है। यशपाल का साहित्य विभाजन, पूंजीवाद और वर्ग–संघर्ष पर केंद्रित है, जहां मानव गरिमा शोषण के विरुद्ध विद्रोह में है। 'झूठा–सच' उनका द्विखंडी उपन्यास भारत–पाक विभाजन की त्रासदी चित्रित करता है। पहला खंड में कनक की कहानी साम्प्रदायिक दंगे में मानवता की हार दिखाती है: "इंसान इंसान को मार रहा है, धर्म का नाम लेकर।" दूसरा खंड 'देश–विभाजन' में पृथ्वी सिंह का संघर्ष आर्थिक विषमता को उजागर करता है। यशपाल ने मार्क्सवादी दृष्टि से वर्ग–संघर्ष दिखाया, लेकिन करुणा के साथ। उनकी कहानी 'दुख का अधिकार' में मजदूर की पीड़ा मानवाधिकार की मांग है।

रांगेय राघव का साहित्य सामाजिक यथार्थवाद से युक्त है, जहां आर्थिक समस्याएं मानव संबंधों को प्रभावित करती हैं। 'मृत्यु का गुड़' (1946) उपन्यास में कालिया का चित्रण ग्रामीण शोषण दिखाता है: "गुड़ बेचकर मृत्यु खरीद ली।" यहां राघव ने किसान की आर्थिक तंगी को व्यंग्यपूर्ण ढंग से चित्रित किया, जो मानव गरिमा की रक्षा की मांग करता है। 'अर्द्धनारीश्वर' में लिंग–संघर्ष के साथ आर्थिक विषमता जुड़ी है, जहां नायक–नायिका का द्वंद्व सामाजिक बंधनों को चुनौती देता है। राघव की कहानियां में प्रेम और संघर्ष का समन्वय मानवतावादी है। दोनों लेखकों ने साहित्य को सामाजिक आंदोलन का हथियार बनाया, जहां संघर्ष मुक्ति का मार्ग है। यशपाल का विभाजन–विमर्श और राघव का व्यंग्य मानवतावाद को समकालीन बनाते हैं।

महिला लेखिकाओं ने हिंदी उपन्यास और कहानियों में स्त्री–विमर्श को मानवतावादी विमर्श का अभिन्न अंग बनाया, जहां लिंग–आधारित मुद्दे जैसे पितृसत्ता, आत्मनिर्भरता और यौनिकता पर जोर दिया। कृष्णा सोबती (1925–2019) की रचनाएं स्त्री–अनुभव की गहराई से भरी हैं, जो मानव गरिमा को लिंग–दृष्टि से देखती हैं। 'मित्रो मरजानी' (1966) उपन्यास में मित्रो की यौनिक स्वतंत्रता का चित्रण क्रांतिकारी है: "मैं अपना शरीर अपना समझती हूँ।" यह पितृसत्तात्मक बंधनों का खंडन करता है, जहां स्त्री को मात्र गृहिणी न मानकर स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में स्थापित किया। 'ऐ लड़की' (1991) में बेटी की खोज स्त्री–विरासत को उजागर करती है, जो समानता की मांग है। सोबती का मानवतावाद आध्यात्मिक है—वे पंजाबी लोक–कथाओं से प्रेरित होकर स्त्री–पीड़ा को सार्वभौमिक बनाती हैं। उनकी कहानी 'लीलावती' में विधवा की संघर्ष मानवाधिकार का प्रतीक है।

मन्नू भंडारी (1931–2021) का साहित्य स्त्री–मनोविज्ञान पर केंद्रित है, जहां लिंग–आधारित मुद्दे नैतिक दुविधा से जुड़े हैं। 'आपका बंटी' (1971) उपन्यास में माता–पिता के तलाक के बीच बंटी की पीड़ा बाल–मन की संवेदनशीलता दिखाती है: "माँ, पापा क्यों अलग हो गए?" यह पारिवारिक विघटन को मानव संबंधों की जटिलता से जोड़ता है। 'महाभोज' (1979) में राजनीतिक भ्रष्टाचार के बीच स्त्री–शोषण प्रमुख है, जहां अमरकांत की पत्नी की कहानी लिंग–विषमता को उजागर करती है। भंडारी का मानवतावाद नारीवादी है—वे कहती हैं: "स्त्री की स्वतंत्रता ही मानव स्वतंत्रता है।" उनकी कहानी 'ट्रेन' में यात्रा के प्रतीक से स्त्री–संघर्ष का चित्रण है। सोबती और भंडारी ने स्त्री–विमर्श को मानवतावादी बनाया, जो वैश्विक फेमिनिज्म से जुड़ता है।

हिंदी उपन्यास और कहानियों में यह मानवतावादी विमर्श साहित्य को सामाजिक दर्पण बनाता है, जहां व्यक्तिगत और सामूहिक संघर्ष समानता की ओर ले जाते हैं। प्रेमचंद की यथार्थवादी करुणा से लेकर महिला लेखिकाओं की लिंग–चेतना तक, यह धारा हिंदी साहित्य की प्रासंगिकता को मजबूत करती है।

निष्कर्ष

हिंदी साहित्य में मानवतावाद की समग्र यात्रा एक निरंतर विकास की गाथा है, जो कालक्रमानुसार सामाजिक–आध्यात्मिक संदर्भों से विकसित हुई। आदिकाल में वीरगाथाओं के माध्यम से लोक जीवन की झलकियां मानव संघर्ष की नींव रखती हैं, जबकि भक्तिकाल ने इसे स्वर्णिम ऊंचाई प्रदान की। निर्गुण धारा में कबीर और नानक ने जातिवाद का खंडन कर समता का संदेश दिया, तो सगुण धारा में तुलसी और सूरदास ने लोकमंगल और मानवीय भावनाओं को जीवंत किया। सूफी काव्य ने धार्मिक समन्वय से प्रेम की सार्वभौमिकता स्थापित की। रीतिकाल में दरबारी श्रृंगारिकता के बीच भूषण जैसे कवियों ने राष्ट्रीयता और लोक–हित का क्षीण स्वर बुलंद किया। आधुनिक काल में भारतेंदु युग ने राष्ट्रीय चेतना से मानवतावाद को जागृत किया, द्विवेदी युग ने नैतिक उपयोगितावाद से इसे मजबूत किया। छायावाद में प्रसाद का आनंदवाद, निराला की करुणा, पंत की प्रकृति–मानव एकता और महादेवी की वेदना ने भावनात्मक गहराई प्रदान की। प्रगतिवाद में नागार्जुन और केदारनाथ ने शोषण का यथार्थ चित्रित किया, जबकि प्रयोगवाद–अज्ञेय ने व्यक्ति–सत्य की खोज की। उपन्यास–कहानी विधा में प्रेमचंद का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, जैनेंद्र की मनोवैज्ञानिक स्वतंत्रता, यशपाल–रांगेय राघव का वर्ग–संघर्ष और कृष्णा सोबती–मन्नू भंडारी का स्त्री–विमर्श ने मानवतावाद को बहुआयामी बनाया। कुल मिलाकर, यह यात्रा पाश्चात्य तर्कवाद और भारतीय आध्यात्मिकता के समन्वय से विकसित हुई, जो मानव गरिमा, समानता और कल्याण पर आधारित है।

वर्तमान संदर्भ में मानवतावाद की प्रासंगिकता और भी गहन हो गई है, विशेषतः वैश्वीकरण, तकनीकी विकास और पर्यावरणवाद के परिप्रेक्ष्य में। वैश्वीकरण ने सांस्कृतिक आदान–प्रदान और प्रवासन को बढ़ावा दिया, जहां हिंदी साहित्य में 'रिटर्न–राइटिंग' (वापसी–कथा) जैसी प्रवृत्तियां उभरीं, जैसे डिजिटल प्रवासन अवसंरचना पर आधारित उपन्यास जो भारत की प्रवासी साहित्यिक परिदृश्य को चित्रित करते हैं। दक्षिण एशियाई पर्यावरण मानविकी ने जलवायु परिवर्तन और जैव–विविधता को साहित्यिक विमर्श का केंद्र बनाया, जो मानव–प्रकृति संबंध की पुनर्परिभाषा करता है।

हिंदी साहित्य में मानवतावाद का सिद्धांत एक अविराम धारा है। इसने हर युग में मानव–केंद्रित मूल्यों की रक्षा की है, शोषितों की आवाज को बुलंद किया है, और सामाजिक विषमताओं के विरुद्ध संघर्ष किया है। यह साहित्य आज भी हमें सिखाता है कि मानव–मात्र की सेवा और गरिमा ही सर्वोच्च धर्म और साहित्य का मूल उद्देश्य है।

संदर्भ ग्रंथ

1. मानववाद तथा मानवतावाद – डॉ. ब्रजभूषण शर्मा। (श्री कला प्रकाशन)
2. मानव मूल्य और साहित्य – डॉ. धर्मवीर भारती। (5जी संस्करण,वाणी प्रकाशन, 2019 ई.)
3. भारतीय चिंतन में मानववाद – डॉ. अनु सिंह । (मनीष प्रकाशन, 2016)
4. मानववाद और साहित्य – डॉ. नवल किशोर।
5. हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य शुक्ल।
6. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेंद्र व डॉ. हरदयाल।
7. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास – बच्चन सिंह।
8. हिंदी का गद्य–साहित्य – डॉ. रामचंद्र तिवारी।
9. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली – डॉ. अमरनाथ।
10. आधुनिक हिंदी उपन्यासों में मानवीय अर्थवता और मानवाधिकार – नवल किशोर (2021)
11. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी(1942)
12. समकालिन हिंदी साहित्य (विचार विमर्श) – पवनकुमार सिंह (2016, मनीष प्रकाशन)
13. छायावाद – नामवर सिंह।
14. प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य – रेखा अवस्थी (राजकमल प्रकाशन)।